॥ ओ३म् ॥

क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?

लेखक—

श्री वैद्य रामगोपालजी शास्त्री

प्रकाशक:—

रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)

प्राप्ति-स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)

प्रथम संस्करण—८००
सं० २०४२
सन् १९८५
मूल्य [illegible] 15/-

मुद्रक:—

शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत)

भूमिका

ऋग्वेद में आर्य, दास तथा दस्यु शब्दों को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने यह मिथ्या कल्पना की कि वैदिक काल में आर्य तथा दास भिन्न-भिन्न जातियां थीं। प्रो० ए० ए० मैक्डानल एवं प्रो० कीथ ने अपनी रचना "वैदिक-इण्डैक्स" के दो भागों में वेदों में आए 'वर्ण' तथा 'जाति' आदि पदों के सम्बन्ध में १९१२ ई० में लन्दन से यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उन्होंने लिखा कि आर्य और दासों में परस्पर युद्ध होते थे; आर्य लोग उन आदिवासी दासों के पुरों (नगरों) को विध्वंस कर देते थे। उनका कहना है कि वेद-में आदिवासियों और उनकी प्रजा का भी वर्णन है। आर्य-दास युद्धों में जब कुछ आदिवासी मर जाते थे तो शेष जीवित आदिवासियों को पकड़कर अपना दास बना लेते थे। उन आदिवासी द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि का वर्ण कृष्ण होता था। उनमें कई "अनास" अर्थात् बैठी हुई नाक वाले होते थे। उनकी बोली कठोर होती थी। आर्य और दासों में प्रमुख रूप से धर्म का अन्तर था। दास लोग आर्य देवताओं से घृणा करते थे, वे यज्ञों के विरोधी थे। दासों का मुख्य धर्म लिङ्ग-पूजा था। इसलिए वेद में उन्हें "**शिश्नदेव**" कहा गया है। आर्य लोग दासों की स्त्रियों को अपनी दासी अर्थात् नौकरानी बना लेते थे। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा कि जहां दास तथा दस्यु लोगों का

आर्यों के साथ युद्ध होता था वहां आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हुआ करता था। इस प्रकार की अनेक निराधार कल्पनाएं उन्होंने अपने ग्रन्थों में की हैं।

वेद के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसा क्यों किया? इसका मुख्य कारण था कि अंग्रेजों को भारत पर राज्य करना था और उनकी मुख्य नीति यह थी कि आर्यों के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद पर ही कुठाराघात किया जाए, जिससे यह सिद्ध किया जाए कि वेद में लिखे हुए "दास" तथा "दस्यु" भारत के आदिवासी ही हैं। वे इस देश के मूल निवासी थे जिन्हें आर्य लोगों ने बाहर से आकर भारत-भूमि से खदेड़ा और उन्हें युद्धों में परास्त करके भारत को सदा के लिए अपने अधीन कर लिया।

फूट के इस बीजारोपण से भारत की द्रविड़, कोल, भील आदि जातियों में सदा के लिए सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा उत्पन्न हो गई, जिसका कुपरिणाम हम इस समय भी देख रहे हैं।

प्रथम-आक्रमण

वैदिक-साहित्य को भ्रष्ट करने के लिए १५ अगस्त १८११ को कर्नल बोडन नामक एक व्यक्ति ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को अपने स्वीकार-पत्र (Will) के अनुसार पुष्कल धन राशि दी और उस धन के लिए शर्त यह थी कि उससे अंग्रेजों को आर्य-साहित्य का ज्ञान कराया जाय, जिससे वे इस साहित्य को जानकर हिन्दुओं को ईसाई बना सकें। विश्वविद्यालय में यह काम मोनियर विलियम को सौंपा गया।

बोडन ट्रस्ट का उद्देश्य—

Chair of oriental studies and the Oxford University under Boden Trust, whose chief object was as follows as given by Monier William in the Introduction to his well known Sanskrit English Dictionary.

"That the special object of his (Boden's) – munificient bequest was to promote the translation of the seriptures into English, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to christian religion." —

मोनियर विलियम ने बोडन ट्रस्ट के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

बोडन साहब के इस ट्रस्ट को महान् दान करने का यह प्रसिद्ध लक्ष्य था कि भारत की संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद करके देशवासियों को इस योग्य बनाया जाय कि वे संस्कृत **ग्रन्थों को जानकर भारतीय जातियों का धर्म** परिवर्तन करके **ईसाई बनाएं।**

सन् १८११ से लेकर ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में यह काम चलता रहा। संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी तैयार हो गई और बहुत से अंग्रेज छात्रों को आर्यों के साहित्य की शिक्षा दी जाने लगी। शिक्षक वर्ग अध्यापन काल में ही छात्रों को संस्कृत-साहित्य के साथ-साथ ऐसी शिक्षा भी देते गये कि जिससे वे भारत में जाकर हिन्दुओं के मनों को कलुषित कर सके।

मैकाले का भारत आगमन

मैकाले जो एक पादरी परिवार में उत्पन्न हुआ था और जो पीछे लार्ड मैकाले बन गया, वह सन् १८३४ में 'लीगल एडवाइजर टु दि कौंसिल आफ इण्डिया' बन कर भारत में आया और यहां पर उसे ऐजूकेशन बोर्ड का प्रधान बनाया गया। वह यहां चार वर्ष रहा और इन चार वर्षों में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूमकर उसने अनुभव किया कि जिस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी राज्य को चला रही है। उससे हम हिन्दुओं को ईसाई नहीं बना सकते, इसलिये उसने पहला कार्य यह किया कि भारतवर्ष में जहां-जहां संस्कृत पढ़ाई जाती थी, उसे अनुदान देना बन्द करवाया और कलकत्ता में स्थानीय कालेज को मिलने वाला अनुदान (Grant) भी बन्द कर दिया गया।

जब वह १८३९ में इङ्गलैण्ड पहुंचा तो उसने कहा कि संस्कृत मैंने इसलिये बन्द की कि यदि संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन इसी प्रकार जारी रहा तो भारत में हम अंग्रेजी सभ्यता को नहीं फैला सकेंगे।

संस्कृत-भाषा हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों का मूल है, यदि हम इस मूल भित्ति को समाप्त कर देंगे और इसके स्थान में शिक्षा अपने हाथ में लेकर अंग्रेजी का शिक्षण कर देंगे तो बिना किसी प्रयत्न के बङ्गाल के हिन्दु विशेषकर उच्च जातियों के हिन्दु स्वयमेव ईसाई बन जायेंगे।

मैकाले ने जो पत्र अपने पिता को लिखा उसी से उसकी मानसिक भावना जानी जा सकती है—

"Calcutta October 12, 1836—My dear Father our english schools are flourshing wonderfully the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu who has received an English education, ever remaius sincirely attached to his religion. Some continuc to profess it as a matter of policy, and some embrace Christionity. It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idolater among the respectable Casts in Bengal thirty years hence. And this will be effected with out any efforts to praselytise, with out the smallest interference with religions liberty by natural operations of Knowledge and reflection. I heartly rejoice in the prospect—Ever yours most effectionately.

—T. B. Macaillay.

मैंकाले ने कलकत्ता से १२ अक्तुबर १८३६ को अपने पिता को इस प्रकार पत्र लिखा—

मेरे प्यारे पिता ! हमारे अंग्रेजी स्कूल बड़ी शीघ्रता से उन्नति कर रहे हैं। इस अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दुओं पर बड़ा लाभकारी प्रभाव हुआ है, कोई भी हिन्दु जिसने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है अपने धर्म के प्रति श्रद्धावान् नहीं रहेगा। कईयों ने तो इस शिक्षा से ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है यदि यह शिक्षा प्रचलित रही तो अब से ३० वर्ष के भीतर-भीतर कोई भी उच्च-जाति का हिन्दु बङ्गाल में मूर्तिपूजक नहीं रहेगा। इस प्रकार बिना किसी यत्न के और इनके धर्म

में बाधा डाले बिना ये स्वयमेव ईसाईयत की ओर प्रवृत्त हो जायेंगे। इस प्रकार की उन्नति से मैं बहुत प्रसन्न हूं।

आपका प्यारा
टी० बी० मैकाले

मकाले के इस पत्र से सिद्ध हो जाता है कि वह संस्कृत का पठन-पाठन सर्वथा बन्द करके अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार इसलिये करना चाहता था कि भारत की उच्च-जातियों के हिन्दु अपने धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म में प्रवेश करें। वास्तव में मैंकाले का नाम टी० बी० मैकाले था—परन्तु भारत के लिए वह टी० बी० का रोग सिद्ध हुआ।

मैकाले से एफ० मैक्समूलर की भेंट

मैकाले सन् १८३८ में जब इङ्गलैण्ड में आया तब वह एक संस्कृत के विद्वान् की खोज में था, वह ऐसा विद्वान् चाहता था: जो वेद के सम्बन्ध में योग्यता रखता हो। एच० एच० विलसन और वारोन वुनसन के द्वारा मैकाले को पता लगा कि जर्मन देशोत्पन्न मैक्समूलर इस काम के योग्य है।

दिसम्बर १८५४ को मैक्समूलर और मैकाले की भेंट हुई। उस समय मैकाले ५५ वर्ष का अनुभवी तथा कुशल राजनीतिज्ञ बन चुका था और मैक्समूलर ३२ वर्ष का नवयुवक था। मैकाले और मैक्समूलर की कई घण्टे बात-चीत होती रही और मैकाले ने मैक्समूलर को कहा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी लाखों रुपये व्यय करने को उद्यत है यदि आप हिन्दुओं के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद का अनुवाद करें और इस ढंग से लिखें कि जिससे वैदिक-विचार-धारा को भ्रष्ट किया जाए। तुम

इस काम में अंग्रेजी सरकार को सहयोग दो और हिन्दुओं के हृदयों में वेद के लिये अश्रद्धा उत्पन्न करो, जिससे अंग्रेजी राज्य की नींव सुदृढ़ हो और हिन्दुओं को विना किसी यत्न के ईसाई बना सकें।

मैक्समूलर की नियुक्ति

मैकाले के सुझाव से जर्मन देशोत्पन्न इङ्गलैण्ड वासी प्रो० एफ० मैक्समूलर ने यह काम १८५५ में आरम्भ किया। मैक्स-मूलर ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वेदानुसंधान के काम में सन् १८५५ ई० लेकर १९०० ई० तक वेद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा। भारतीय लोग यह समझते रहे कि मैक्समूलर ने वेदानुसन्धान करके वैदिक-साहित्य के लिए बड़ा उपकार किया है, परन्तु मैक्समूलर के हृदय में तो वेद को जड़ से नष्ट करने की भावना थी; उसका लक्ष्य था कि वैदिक विचारधारा तथा श्रद्धा को नष्ट करके भारत में ईसाई मत का बीजारोपण किया जाए। मैक्समूलर का लक्ष्य उनके निम्न पत्रों द्वारा सिद्ध होता है—

प्रथम पत्र—मैक्समूलर ने १८६६ में अपनी पत्नी को लिखा था—

"I hope I shall finish the work and I feel convinced though I shall not live to see it yet this addition of mine and the translation of the Veda will here after tell to great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root

is. I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.

अर्थात् मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण करूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है, यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित न रहूंगा, तथापि मेरा यह संस्करण वेद का आद्यन्त अनुवाद बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि इनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है—उस धर्म को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है, जो गत ३ सहस्र वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है।

द्वितीय पत्र—यह पत्र १६ दि० १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मन्त्री ड्यूक आफ आर्गायल को लिखा था—

The ancient religion of India is doomed, if christianity does not step in, whose fault will it be ?

भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है; यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचलित होता है तो इसमें किसका दोष है ?

तृतीय पत्र—सन् १८९९ ई० में ब्रह्मसमाजी मिस्टर एन० के० मजुमदार को लिखा—

"You know for how many years. I have matehed your efforts to purify the popular religion of India and thereby to bring it near to the purity and perfection of

---

१. यह तथा अगले पत्र Life and Letters of Max Mueller से उद्धृत हैं।

other religions, particularly of christianity......Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen From openly following christ.

अर्थात् तुम जानते हो मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एवम् उसको अन्य धर्मों, विशेषकर ईसाई मत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेक वर्षों से अध्ययन किया है......तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियां बताओ जो तुम्हें तुम्हारे देशवासियों को स्पष्ट रूप से ईसाई बनने में बाधा डालती है।

चतुर्थ पत्र—प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई० बी० पूसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा—

A friend of Poof. Max Mullar, Mr. E. B. Pussey writes to him thus:—

"Your work will form a new era in the efforts for conversion of India and Oxford will have reason to be thankful for that, by giving you a home, it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that carly false religion with the true illustrates the more than blessedness of what we enjoy."

"तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और......।

ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त के प्रति मैक्समूलर के निन्दनीय वाक्य—

As the authors of the Brahmanas were blinded by theology, the authors of the still later Niruktas were deceived by etymological fictions, and both conspired to mislead by their authority later and more sensible commentators, such as Sayana.[1]

"अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने मतवाद से अंधे होकर पुस्तकें लिखी हैं और उनके पीछे निरुक्तकारों ने धातुवाद के झूठे आडम्बर में फंसाकर धोखा दिया है और इन दोनों प्रकार के लेखकों ने जनता को अपनी विद्वत्ता के कारण धोखा दिया है—और इनके पीछे के काल के सायण जैसे समझदार टीका-कारों को भ्रामक मार्ग पर डाल दिया है।"

ग्रिफथ का कार्य

आर० टी० एच० ग्रिफथ जो पहले बनारस कालेज का प्रिंसिपल था। उससे ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद सन् १८८९ में कराया गया, जिसमें वेद के विचारों को भ्रष्ट करने के लिये उसने अपने भाष्य में मनमानी की, उसका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जा रहा है—

दासपत्नीरहिगोपाः। ऋक् १।३२।११॥

इस मन्त्र की टिप्पणी में दास पद पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि जङ्गली, डाकू, भारत के अनार्यों में से कोई एक।

---

1. See preface Page XI of Griffith's English Translation of Rig Veda.

It means also, a savage, a barbarian, one of the non-Aryan inhabitants of India.

आभिः स्पृधः । ऋक् ६।२५।२ ॥

इस मन्त्र का अनुवाद करते हुये "दासों की जातियां" (Tribes of dasas) वाक्य उसने अपने आप जोड़ दिया है। मन्त्र में कहीं भी जाति का वर्णन नहीं है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् । ऋक् ६।३३।३ ॥

इस मन्त्र के अनुवाद में लिखा है कि (Both races) दो जातियें। मन्त्र में **उभयान् अमित्रान्** पाठ है। इसका अर्थ है— दो प्रकार के शत्रु। ग्रिफ्थ ने यहां पर अमित्र का अर्थ जाति किया है—

कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः । ऋक् ६।४७ २१ ॥

इस मन्त्र की टिप्पणी पर ग्रिफ्थ ने (Dark aborigines) "काले वर्ण के मूल निवासी" यह लिखा है—हाला कि वेद में मूल आदिवासी अर्थात् मूल निवासीवाची कोई शब्द ही नहीं है जिसका उक्त अर्थ किया गया है। यहां हमने स्थालीपुलाक न्याय से उद्धरण दिये हैं कि इस प्रकार वेद को भ्रष्ट करने लिए इन लोगों ने यत्न किया है।

मैक्समूलर के कुछ काल पीछे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष ए० ए० मैकडानल को बनाया गया। उसने अपनी पद्धति को स्थायी रूप से प्रचलित रखने के लिये वेद के छात्रों के लिये—१. वैदिक रीडर फार स्टूडेंटस (Vedic Reader for students.) २. वैदिक ग्रामर (Vedic grammer), ३. वैदिक मैथालोजी (Vedic Mythology)

इन तीन ग्रन्थों को लिखा। सन् १९१२ में प्रो० कीथ के साथ मिलकर **वैदिक इण्डैक्स** नामक पुस्तक की रचना की। इस प्रकार अनेक ग्रन्थ वैदिक-विचारधारा को भ्रष्ट करने के लिये लाखों रुपये व्यय करके अंग्रेज सरकार ने लिखवाये।

आर्य लोग भारत के बाहर से आये हैं. भारत के मूल निवासी द्रविड़-कोल-भील-संथाल आदि ही यहां के आदिवासी थे, यह विचार सब से प्रथम **कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया** में दिया गया है।

नियम-बद्ध योजना—भारत में पाश्चात्य मान्यताओं का प्रसार करने के लिए बनारस और लाहौर में केन्द्र बनाए गए। बनारस में टी० एच० ग्रिफथ को बनारस कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। लाहौर में ए० सी० वुलनर को ओरिएन्टल कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। इन कालिजों में संस्कृत के एम० ए० उत्तीर्ण छात्रों (विशेषकर ब्राह्मण) को उच्चतम छात्र-वृत्ति देकर आक्सफोर्ड भेजा जाता था और जो छात्र उन गौरांग महाप्रभुओं से शिक्षा लेकर आते थे, उन्हें प्रिंसिपल अथवा उच्च कोटि का प्रोफेसर बनाया जाता था। लाहौर और बनारस में दोनों प्रिंसिपल वेद की कक्षाओं को स्वयं पढ़ाते थे और वहां वही पद्धति पाठ्यक्रम की रखी गई थी जो आक्सफोर्ड में थी।

इस प्रकार भारतीय छात्र, जिन्हें अपने ग्रन्थों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था, विदेशी गुरुओं के पास जाकर उनके रङ्ग में ही रङ्ग जाते थे। इस तरह निरन्तर अनेक वर्षों तक यह योजना चलती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि वे भारतीय विद्वान् ही पाश्चात्य पद्धतियों के प्रचार और प्रसार

के साधन बन गए। इन भारतीयों ने भी वही राग अलापना आरम्भ किया जो अंग्रेज चाहते थे।

सन् १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये, परन्तु दुःख है कि अभी तक भी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विद्यालयों में उसी विषाक्त पद्धति से शिक्षा दी जा रही है और वही विषाक्त विषय पढ़ाये जा रहे हैं जिनमें आर्य, दास-दस्यु को भिन्न जातियां कहा गया है और यही सिखाया जाता है कि भारत के मूल निवासी आर्य नहीं थे। इन्होंने बाहर से आकर आदिवासियों पर आक्रमण किए और इन्हें अपना दास बनाया। जब तक इस भ्रान्त मान्यता को समूल नष्ट नहीं किया जायेगा, तब तक वैदिक-संस्कृति और भारतीय चिन्तन खड़े नहीं हो सकते।

वास्तव में आर्य, दास तथा दस्यु कोई जातियां नहीं थीं और न ही इनके युद्धों का वर्णन वेद में है। वेद में ये शब्द गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। जो पाश्चात्य लेखक ऋग्वेद में आदिवासियों को चपटी नाक और काली त्वचा वाले बताते हैं, वह असत्य है। वे यह भी कहते हैं कि आर्य-लोग आदिवासियों की बस्तियों (पुरों) का विध्वंस करते थे और कभी-कभी आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हो जाया करता था। उनकी ये सारी बातें वेद और सत्यान्वेषण के विरुद्ध है। मेरा उनसे खुला प्रतिवेदन है कि वे सामने आएं और इस विषय में चर्चा करें, ताकि भारत से इस मान्यता को नष्ट किया जा सके।

आर्यसमाज मार्ग
करोल बाग
नई दिल्ली - 5
२५-६-१९९०

लाहौर वास्तव्य
रामदास वधवात्मज
रामगोपाल शास्त्री वैद्य

उपसंहार

इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि आर्य और आदिवासियों के युद्ध का वर्णन वेद में नहीं है और यह भी सिद्ध किया गया है कि आर्य, दास और दस्यु जातियां नहीं थीं, प्रत्युत वेद के ये पद गुण वाचक हैं, जाति वाचक नहीं।

आरम्भ में आर्य शब्द दो प्रकार से सिद्ध किया गया है— एक अपत्यार्थ में, जैसे **अर्यस्य अपत्यं आर्यः** और दूसरा **ऋ गति-प्रापणयोः** धातु से ण्यत् प्रत्यय लगाकर सिद्ध किया गया है। इसका अर्थ है—**अरणीयः प्रापणीयः गमनीयः** अर्थात् जिसके पास जाया जाये। परन्तु वेद में ऐसे भी मन्त्र आते हैं जहां आर्य पद शत्रु के विशेषण में आया है, वहां इसका अर्थ होगा बलवान् अथवा महान् अर्थात् अभिगमनीय=जिस शत्रु पर अभिगमन अर्थात् चढ़ाई करनी चाहिये।

दास शब्द वेद में मुख्यतः दो धातुओं से बना है—एक **दसु उपक्षये** और दूसरा **दासृ दाने** से। उपक्षयकारी घातक के लिये दसु धातु का प्रयोग हुआ है और जहां वेद में भृत्य या किंकर अर्थ में दास पद आया है, वहां 'दासृ-दाने' धातु से बना है। वेद में दास शब्द आद्युदात्त और अन्तोदात्त भेद से उपलब्ध होता है। जहां आद्युदात्त है वहां भाव और कर्म में प्रत्यय होता है। इसका अर्थ है—**दस्यते इति दासः**। अर्थात् जिसको मारा जाए, और अन्तोदात्त में **दासयति इति दासः**" जो मारता है अथवा जो हिंसक है वह दास है।

दस्यु पद वेद में **दसु-उपक्षये** धातु से बना है। **"दस्यति नाशयति इति दस्युः"** जो नाश करता है वह दस्यु है ।

वेद में आर्य शब्द मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। आर्य शब्द इन्द्र, श्रेष्ठ व्यक्ति, ज्योति, व्रत, तथा प्रजा के विशेषणों में आया है।

इसी प्रकार दास शब्द भी वेद में मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिए आया है। दास और दस्यु पद मनुष्यों और शम्बर आदि के विशेषण में भी आये हैं।

पाश्चात्य मान्यता वालों ने दास और दस्यु पदों से जो भारत के आदिवासियों की कल्पना की है, यह सब भ्रांतियां वेद को आर्यों की दृष्टि में अपमानित करने के लिये लिखी गई हैं।

इस पुस्तक के पढ़ने से विद्वानों को निश्चय हो जायेगा कि आर्य और दस्यु तथा दासों का युद्ध जो वेद में आता है वह मानवीय नहीं, प्रत्युत इन्द्र-वृत्र अथवा विद्युत् और मेघ का अन्तरिक्ष में जो संघर्ष है वह प्राकृतिक युद्ध है। पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने जो मनुष्यों का युद्ध है ऐसा सिद्ध करने की चेष्टा की है वह निराधार कल्पना है।

आदिवासी

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने शम्बर, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् तथा इलीबिश शब्दों के आधार से यह लिखा है कि— कि ये लोग आदिवासियों के प्रमुख सरदार थे। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। शम्बर आदि सब मेघों के नाम हैं। इसके लिये ऋक् १।५९।६ देखिये। मन्त्र में स्पष्ट है कि जब इन्द्र अर्थात् विद्युत् तरङ्गों ने शम्बर अर्थात् मेघ पर प्रहार

किया तो शम्बर मेघ से जल की धारायें छूट निकलीं। निरुक्त में भी इन्हें मेघ ही लिखा है। अतः पाश्चात्य मान्यता वालों की उक्त कल्पना भी उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात को सिद्ध करती है।

चपटी नाम वाले आदिवासी

वेद में 'अनास्' शब्द आया है, इसे देखकर पाश्चात्य मान्यता वालों ने अर्थ किया कि जिनकी नासिक नहीं ऐसे चपटी नाक वाले आदिवासी। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। यहां अनास् का अर्थ है 'न शब्द करने वाले' अर्थात् मूक मेघ, जो गरजते नहीं। यह अनास् शब्द दस्यु मेघ के विशेषण में आया है। यहां 'चपटी नाक वाले लिखना' भ्रान्ति नहीं तो और क्या है?

काले वर्ण के आदिवासी

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने भारत के आदिवासियों को कृष्ण वर्ण अर्थात् काले रंग की त्वचा वाले लिखा है। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। उन्होंने जितने मन्त्र अपने पक्ष की पुष्टि में दिये हैं उन मन्त्रों में कृष्ण वर्ण मेघ तथा अन्धकारमयी रात्रि का वर्णन है। मन्त्रों में मनुष्यों का कहीं प्रकरण नहीं है।

आदिवासियों की बस्तियों अर्थात् पुरों का विध्वंसन

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने लिखा है कि आदिवासियों के पुर थे, वे युद्ध के समय उन अपनी बस्तियों का आश्रय लेते थे। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। पुरों के प्रकरण में मनुष्यों का कहीं वर्णन नहीं आता है। यह भी एक प्रकार

के मेघ हैं जिनकी तूफान के समय घटायें उठती हैं, उन घटाओं को ही वेद में मेघों के पुर अर्थात् नगरो लिखा है। इन्द्र अर्थात् विद्युत् वायु आवेष्टित तरङ्गों से उन घटाओं को तोड़ते हैं ये ही इन्द्र का असुरों अर्थात् मेघों की पुरियों का विध्वंसन है। इस प्रकार भारत के आदिवासियों के नगरों को आर्य तोड़ते हैं, ऐसा लिखना उनकी अज्ञानता और पक्षपात को सिद्ध करता है।

आदिवासियों का धर्म

आर्यावर्त में फूट का बीजारोपण करने के लिये पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने लिख दिया कि—द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि मूल—निवासियों का धर्म बाहर से आये हुये आर्यों से पृथक् था। उन्होंने लिखा है कि आदिवासी यज्ञों के विरोधी थे—उनका प्रमुख धर्म **लिङ्ग पूजा** था। यह भाव उन्होंने वेद में आये हुये **शिश्नदेव पद** से सिद्ध करने का यत्न किया है। उनकी यह धारणा भी मिथ्या एवं कल्पित है। वेद के प्रकरण और ३१ सौ वर्ष **विक्रम** पूर्व में उत्पन्न हुये यास्काचार्य ने 'शिश्नदेव' का अर्थ किया है—**अब्रह्मचर्यः** अर्थात् व्यभिचारी। शिश्नदेव पद से **शिश्नेन ये क्रीडन्ति ते शिश्नदेवाः अर्थात्** जो उपस्थेन्द्रिय से क्रीडा में रत भोगवादी हैं, जो दिन रात शिश्न में ही रत हैं वे व्यभिचारी शिश्नदेव कहलाते हैं।

आदिवासी लिङ्गपूजक थे, ऐसा लिखकर उन्होंने वेद के अर्थों में अनर्थ करने का यत्न किया है।

आर्यों और आदिवासियों का युद्ध

शम्बर, चुमुरि और धुनि आदि शब्दों को वेद में देखकर

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने सिद्ध करने का यत्न किया है कि ये आदिवासियों के प्रमुख नेता थे।

यह भ्रान्ति उन्होंने इसलिये फैलाई कि यह सिद्ध किया जा सके कि आर्य लोग बाहर से आये और यहां के मूल निवासी आदिवासियों से युद्ध करके विजयी हुये। इनकी यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि वेद में शम्बर, चुमुरि आदि मनुष्यों के नाम नहीं हैं, ये तो मेघों के नाम हैं और वेद मन्त्रों में प्रकरण भी मेघों का ही है। अन्तरिक्ष में इन्द्र (विद्युत्) और वृत्र (मेघ) का जो प्राकृतिक संघर्ष है यही आधिदैविक युद्ध है। यास्काचार्य ने भी लिखा है कि इन वेद मन्त्रों में **'उपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति'**। इस रूपकालङ्कार को आदिवासी और आर्यों का युद्ध सिद्ध करना अपनी अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध करना है।

आर्यों का आर्यों से युद्ध

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने वेद के कुछ मन्त्रों को उद्धृत करके यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि जहां आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्ध होता था, वहां आर्य भी आर्यों के साथ लड़ा करते थे। यह भ्रान्ति उन्हें व्याकरण के नियमों के न जानने से हुई है। हमने आरम्भ में आर्य पद की सिद्धि के प्रकरण में लिखा है कि जहां आर्य शब्द शत्रु के विशेषण में आएगा वहां आर्य का अर्थ महान् अथवा बलवान् होगा। इस व्याकरण के नियम के न जानने से उन्होंने अर्थ करने में अपनी अज्ञानता प्रकट की है। वेद में न तो आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्धों का वर्णन है और न हि आर्यों का आर्यों के साथ परस्पर युद्ध का वर्णन है। यह सब भ्रान्तियां वैदिक-

चिन्तन को भ्रष्ट करने, वेद में अश्रद्धा उत्पन्न कराने और भारतीय आर्यों को ईसाई बनाने के लिये फैलाई गई हैं। यह हमने भूमिका में मैकाले, मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ तथा ग्रिफथ आदि के लेखों से सिद्ध कर दिया है।

अन्तिम निवेदन

मुझे दुःख से लिखना पड़ता है कि अभी तक भी विश्व-विद्यालयों, महाविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है कि आर्यों ने भारत के आदिवासियों को युद्ध में परास्त करके भारत में आधिपत्य जमाया था। जब हमने यह सिद्ध कर दिया कि आर्य, दास और दस्यु जातिवाचक शब्द नहीं और यह भी सिद्धकर दिया कि आर्य से श्रेष्ठ और दास तथा दस्यु से अनार्य अर्थ, ग्रहण किया जाता है, तो फिर आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्ध का कोई आधार नहीं रहता। जब तक इन शिक्षणालयों में इस प्रकार की भ्रान्ति-पूर्ण वेद-विरोधी विचारधारा को समाप्त नहीं किया जायेगा, तब तक द्रविड़, कोल, भील आदि भारतीयों के हृदय में आर्यों अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं के प्रति घृणा बनी रहेगी। हमारा मुख्य कर्तव्य है कि हर प्रकार से इस वेद-विरोधी विचार-धारा को नष्ट करके भारत का कल्याण करें।